साथ-साथ एम्पेडॉक्लीज़ ने वनस्पतियों, जानवरों और मनुष्यों की उत्पत्ति विकासवाद के सिद्धान्त के आधार पर सिद्ध करने की चेष्टा की है। इस जीवन-संघर्ष में जो समर्थ या सक्षम, हैं, वे ही अपना अस्तित्व कायम रख सकते हैं, निर्बलों का विनाश अवश्यम्भावी है।

प्रत्यक्षीकरण—न्याय-वैशेषिक की भाँति एम्पेडॉक्लीज़ का विचार है कि समान ही समान का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। ज्ञानेन्द्रियाँ और तत्सम्बन्धी विषयों में तात्त्विक एकता होती है। उसके अनुसार सभी वस्तुएँ कुछ द्रव्य निःस्त्रवित (Effluences) किया करती हैं और जब ये हमारी ज्ञानेन्द्रियों से टकराते हैं तो हमें उनका ज्ञान होता है। पर ज्ञान के लिए यह आवश्यक है कि ये प्रवाहित द्रव्य ज्ञानेन्द्रियों के रन्ध्रों से न तो लघुतर हों और न महत्तर। यदि लघुतर होंगे तो रन्ध्रों में प्रवेश कर जायँगे और यदि महत्तर होंगे तो प्रवेश ही न पा सकेंगे। दोनों अवस्थाओं में ज्ञान असम्भव होगा। ज्ञान की दृष्टि से एम्पेडॉक्लीज़ विज्ञान-प्रतिविम्ववादी या वाह्यानुमेयवादी है। अतः उसके दर्शन में वे सारी कठिनाइयाँ वर्तमान हैं जो वाह्यानुमेयवाद में पाई जाती हैं। यहाँ ज्ञान हमें केवल प्रवाहित द्रव्यों का ही होता है, उन वस्तुओं का नहीं होता जो द्रव्यों को प्रवाहित करती हैं।

२. एनेक्ज़गोरस (Anaxagoras) (समय—ई०पू० ४८०-ई०पू० ४२८, स्थान—क्लेज़ोमेनी)

एम्पेडॉक्लीज की भाँति एनेक्ज़ेगोरस भी एक समन्वयवादी दार्शनिक हैं जिन्होंने सत् और असत् तथा गति और अगति में समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की। जीवन के प्रारम्भिक काल में ही उन्होंने दार्शनिक चिन्तन प्रारम्भ कर दिया था। बीस वर्ष की अवस्था ही में वे एथेन्स के एक गणनीय दार्शनिक समझे जाने लगे थे। गणित और ज्योतिष में उनकी विशेष रुचि थी। वे एक सिद्धान्तवादी और आदर्शवादी व्यक्ति थे। अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के कारण ही वे जीवन में अधिक सफल नहीं हुए।

रचनाएँ—डायोजेनीज [१७] ने एनेक्ज़ेगोरस का नाम ऐसे दार्शनिकों की सूची में रखा है जिन्होंने केवल एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। उसने प्रकृति (On Nature) के ऊपर पुस्तक लिखी है जिसकी शैली बहुत ही ''उच्च और सौष्ठवपूर्ण'' है। छठी शताब्दी में सिम्प्लीशियस ने इस पुस्तक की एक प्रतिलिपि प्राप्त की थी। आज जो हमें एनेक्ज़ेगोरस के बारे में जानकारी है, वह सिम्प्लीशियस द्वारा सुरक्षित गद्यांशों के ही कारण है। अभाग्यवश उसने जो उद्धरण प्रस्तुत किए हैं, वे एनेक्ज़ेगोरस की पुस्तक के प्रथम भाग तक ही सीमित हैं जिसमें उसने दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। उसके विस्तृत विवरण से हम अनभिज्ञ रह जाते हैं।

तत्त्व-विज्ञान

एम्पेडॉक्लीज़ की भाँति एनेक्ज़ेगोरस का दर्शन भी ईलिएटिक मत और ज्ञानेन्द्रियों में समन्वय स्थापित करने का एक प्रयास है। इस प्रकार एनेक्ज़ेगोरस के दर्शन की पूर्व-मान्यताएँ लगभग वही हैं जो एम्पेडॉक्लीज़ के दर्शन की थीं।

(१) एनेक्ज़ेगोरस, एम्पेडॉक्लीज़ और पार्मेनाइडीज़ से इस बात में पूर्ण रूप से सहमत

---

१७ डायोजे० ; १६

है कि संसार में न तो किसी वस्तु की आत्यन्तिक उत्पत्ति हो सकती है और न उसका आत्यन्तिक विनाश। 'उन सभी वस्तुओं के पूर्व निर्धारित होने के कारण, हमें जानना चाहिए कि उनमें न तो आधिक्य हो सकता है और न न्यूनता; क्योंकि यह सम्भव नहीं है कि जो कुछ है, उससे वे अधिकतम हो जायँ; और न सभी कुछ सर्वदा समान बनी रहती है।'[18] अतः किसी वस्तु की उत्पत्ति नहीं हो सकती। साथ-साथ किसी वस्तु का विनाश भी नहीं हो सकता। 'क्योंकि न तो किसी वस्तु की उत्पत्ति होती है और न उसका विनाश; किन्तु जो वस्तुएँ हैं, उनका संयोग और वियोग अवश्य होता है। अतः उनके लिए, उत्पत्ति को संयोग और विनाश को वियोग कहना अधिक उपयुक्त होगा।'[19] इस प्रकार एनेक्ज़ेगोरस का सत् भी नित्य, अविकारी तथा उत्पत्ति-विनाश रहित है।

(२) इसी प्रकार एम्पेडॉक्लीज़ की भाँति एनेक्ज़ेगोरस भी गति, परिवर्तन अथवा परिणाम का निषेध नहीं करता। उसके अनुसार गति, परिवर्तन तथा परिणाम जगत् के लिए उतने ही सत्य हैं जितने अगति, अपरिवर्तन तथा अपरिणाम। हाँ, इतना अवश्य है कि वह गुणात्मक परिवर्तन में विश्वास नहीं करता क्योंकि 'असत्' से 'सत्' की उत्पत्ति कदापि नहीं हो सकती। उसके लिए सारे परिवर्तन परिमाणात्मक ही होते हैं। ये परिमाणात्मक परिवर्तन संयोग और वियोग (Composition and Decomposition) के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं।

यह हम पहले ही देख चुके हैं कि किस प्रकार एम्पेडॉक्लीज़ ने तप्त और शीतल, नम और शुष्क इन चार विरोधों (Opposites) को वस्तुओं के रूप में लेकर जगत् को विवर्त (Appearance) होने से बचा लिया। एनेक्ज़ेगोरस ने इस व्याख्या को अपर्याप्त करार दिया। उसने बताया कि चार ही पदार्थों में विश्वास करने से जगत् की सत्यता सुरक्षित नहीं की जा सकती। यदि अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी चार ही पदार्थ सत् हैं तो सोने, चाँदी, लोहे, ताँबे इत्यादि पदार्थों को विवर्त होने से हम नहीं बचा सकते। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि संसार में परिवर्तन नहीं होते। परिवर्तन होते हैं। परिवर्तन जगत् का कटु सत्य है। पर परिवर्तन का कारण यह नहीं है कि संसार में केवल चार ही मूल-पदार्थ हैं, वरन् यह इसलिए है कि—**प्रत्येक वस्तु में प्रत्येक वस्तु का अंश विघमान है।**[20] एनेक्ज़ेगोरस का यह दृढ़ विश्वास है कि संसार में प्रत्येक वस्तु की परिणति प्रत्येक अन्य वस्तु में सम्भव है, पर यह इसलिए है कि प्रत्येक वस्तु में प्रत्येक वस्तु का अंश वर्तमान रहता है।

'प्रत्येक वस्तु के भीतर प्रत्येक वस्तु के अंश वर्तमान हैं' यह कथन संसार की स्थूल वस्तुओं के लिए उतना ही सत्य है जितना कि सूक्ष्म मूल-द्रव्यों के लिए। 'और चूँकि वस्तुएँ चाहे आणविक हों अथवा महान्, उनके भीतर अंशों का परिमाण समान होता है। इस कारण भी वस्तुएँ प्रत्येक वस्तु के भीतर विद्यमान होंगी; और न तो उनके लिए यही सम्भव है कि वे पृथक् रह सकें, किन्तु सभी वस्तुओं में प्रत्येक वस्तु के अंश वर्तमान रहते हैं।'[21] एनेक्ज़ेगोरस का कथन है कि यदि तर्क के हेतु मान भी लिया जाय कि आणविक वस्तुओं में 'अंशों' की संख्या और मात्रा महान् वस्तुओं की अपेक्षा न्यूनतर

डील्स फ्रैग्मे० ५
वही, फ्रैग्मे० १७

होती है तो इसका यह अर्थ होगा कि विभाजन के परिणामस्वरूप आणविक वस्तुओं में
अंशों की कुछ मात्रा का आत्यन्तिक विनाश हो जाता है जो कि असम्भव है। ''और न
तो किसी लघु वस्तु की लघुतम मात्रा हो सकती है, किन्तु किसी लघुतर वस्तु की सम्भावना
सदा बनी रहती है, क्योंकि यह असम्भव है कि किसी वस्तु की सत्ता केवल विभाजन के
कारण ही समाप्त हो जाय। किन्तु साथ-साथ यह भी सत्य है कि किसी महान् से भी
महानतर वस्तु की कल्पना सदैव बनी रहती है, और यह परिमाण में लघु के ही तुल्य
होती है। अपनी ही तुलना में, प्रत्येक वस्तु महान् और लघु दोनों है।'' इस प्रकार हम
देखते हैं कि कोई वस्तु चाहे लघु हो और चाहे महान् हो, उसके अन्दर 'अंशों' की संख्या
समान ही होती है; अर्थात् उसमें प्रत्येक वस्तु के अंश वर्तमान रहते हैं।

अंश क्या हैं?—अब हमारे समक्ष प्रश्न यह है कि वे ''वस्तुएँ'' कौन और क्या हैं
जिनके अंश प्रत्येक वस्तु में विद्यमान रहते हैं। यदि यह सत्य है कि प्रत्येक वस्तु अनन्त
तक विभाजनीय हैं, और उसके लघुत्तम अणु में उतने ही 'अंश' हैं जितने कि उसके
महत्तम पिण्ड में तो उस वस्तु का हम चाहे कितनी ही अधिक सीमा तक विभाजन करें,
उसकी अमिश्रित, शुद्ध और सरल इकाइयों तक कभी नहीं पहुँच सकते। इस प्रकार हम
देखते हैं कि सूक्ष्म और सरल प्रकृति वाली एकजातीय इकाई का अस्तित्व ही नहीं है।
फिर वस्तुओं के अंशों का क्या मतलब ?

उपर्युक्त समस्या के समाधान का केवल एक ही उपाय है और वह यह है कि वस्तुओं
के अंशों से तात्पर्य उनके परमाणुओं से नहीं है, वरन् उनके धर्मों या गुणों से है। इस
बात का संकेत हमें खण्ड ८ से स्पष्ट रूप से मिलता है। एनेक्ज़ेगोरस ने उसमें कहा है
कि ''इस संसार में जो वस्तुएँ हैं, उनका न तो कुल्हाड़ी द्वारा स्पष्ट विभाजन हुआ है और
न वे एक दूसरे से बिल्कुल पृथक् ही हैं; न तो तप्त शीतल से पृथक् है न शीतल तप्त
से।''[23] और इसी प्रकार खण्ड ४ और १५ में अन्य विरोधों (Opposites) के विषय में
चर्चा करते हुए कहा गया है कि उनमें कोई आत्यन्तिक विरोध नहीं है। प्रत्येक पदार्थ में
सभी धर्म (चाहे सम्बद्ध हों अथवा विरुद्ध) वर्तमान होते हैं। अतः जब एनेक्ज़ेगोरस कहता
है कि ''प्रत्येक वस्तु के अंश वर्तमान होते हैं'' तो यहाँ ''अंश'' से तात्पर्य पदार्थों से
नहीं है, वरन् गुणों से है। भारतीय दर्शन की भाषा में अंशों का अर्थ 'पुद्गल' से नहीं,
वरन् 'धर्मों' से हैं। प्रत्येक वस्तु चाहे वह लघु हो अथवा महान्, सभी प्रकार के धर्मों
का अधिष्ठान है; जो वस्तु तप्त है, उसमें कुछ न कुछ शीतलता भी अवश्य पायी जाती
। एक स्थान पर एनेक्ज़ेगोरस ने कहा है कि ''बर्फ काला है''। अर्थात् सफेद काला है
और काला सफेद है। एनेक्ज़ेगोरस के ऊपर हेरेक्लाइटस का यहाँ प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित
ता है।

बीज (Seeds)—एम्पेडॉक्लीज़ ने केवल चार मौलिक तत्त्वों की कल्पना की थी: अग्नि,
यु, जल और पृथ्वी। उसका कहना था कि यदि हम संसार की विभिन्न वस्तुओं को
भाजित करते चले जायँ तो अन्तिम अवस्था में हम उनके मूल (roots) तक पहुँच
येंगे। यही मूल या बीज वे ''तत्त्व'' हैं जिनसे सम्पूर्ण विश्व की रचना हुई है। उन
त्वों की संख्या केवल चार है : अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी। एनेक्ज़ेगोरस का विचार

[illegible] किसी सीमा तक विभाजित करें, यहाँ तक कि अनन्त तक, है कि हम वस्तुओं का [illegible] शुद्ध अथवा सरल इकाई तक नहीं पहुँच सकते जिसमें विरोधी भी किसी ऐसी अमिश्रित [illegible] अर्थात्, संसार की कोई भी वस्तु ले ली जाय, यदि वह लघु गुणों का समावेश न हो। [illegible] पाये जाते हैं। किसी भी वस्तु की परिमित अन्य वस्तुओं [illegible] उसमें अनन्त [illegible] के भीतर अन्य वस्तुओं के भाग (अंश), विभिन्न मात्राओं में हो सकती है। प्रत्येक [illegible] में विद्यमान है। एनेक्ज़ेगोरस ने अपने दर्शन में 'तत्त्व' (Elements) शब्द का प्रयोग इन्हीं बीजों (Seeds) के लिए किया है जिनके भीतर संसार की अन्य सारी वस्तुओं के अंश विद्यमान होते हैं।

एम्पेडॉक्लीज़ और एनेक्ज़ेगोरस के दर्शनों में जो भेद है उसका हम एक दूसरे दृष्टिकोण से भी विचार कर सकते हैं। एम्पेडॉक्लीज़ के चारों महाभूतों में एक मौलिकता थी। वे स्वयं तो सजातीय थे, पर उनमें परस्पर विजातीयता थी। उनमें ऐसा कोई तत्त्व नहीं था जिसे सामान्य कहा जा सके। वे विशेष द्रव्य थे। पर एनेक्ज़ेगोरस के तत्त्व की कल्पना कुछ दूसरी है। उसके अनुसार प्रत्येक वस्तु में प्रत्येक अन्य वस्तुओं के 'अंश' पाये जाते हैं। पर यदि ऐसी बात है तो हम वायु को वायु, जल को जल और पृथ्वी को पृथ्वी ही क्यों पुकारते हैं ? इसके लिए एनेक्ज़ेगोरस का उत्तर है कि हम 'वायु' को 'वायु' इसलिए कहते हैं, क्योंकि उसके भीतर वायु के गुणों का सर्वाधिक समावेश है; 'वायु' को वायु इसलिए कहा जाता है कि उसके भीतर शीतलता की अधिकतम मात्रा है और 'अग्नि' को अग्नि इसलिए कहा जाता है कि उसके भीतर ताप की अधिकतम मात्रा है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि वायु में ताप की मात्रा नहीं है और न अग्नि में शीतलता है। वायु और अग्नि में क्रमशः ताप और शीतलता अवश्य पायी जाती है, पर उनकी मात्रा न्यूनतम है। इस प्रकार एनेक्ज़ेगोरस के महाभूत वास्तव में नाना प्रकार के बीजों के समुच्चय रूप हैं।

तत्त्व असंख्य हैं—सृष्टि के प्रारम्भ में सभी प्रकार के पदार्थ एक मिश्रित अवस्था में थे और अपनी मौलिक अवस्था में विश्व भर में व्याप्त थे। असंख्य बीज अनन्त भागों में विभाजित होकर परस्पर इस प्रकार घुले-मिले थे कि प्रत्येक का अन्य प्रकार के पदार्थों के साथ सान्निध्य था। वह अपार राशि जिसमें सभी वस्तुओं के बीज वर्तमान हैं, एक स्वतन्त्र, निरपेक्ष सत्ता है जिसके परे किसी भी अन्य वस्तु का अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार वह अनन्त है। जगत् के मूल ''बीजों'' के भीतर अनन्त गुण ही नहीं है वरन् इन बीजों की संख्या भी अनन्त है। 'संख्या और लघुता दोनों में वस्तुएँ अनन्त हैं और साथ-साथ निवास करती हैं।'[25]

अब प्रश्न यह है कि एनेक्ज़ेगोरस ने अनन्त बीजों की क्यों कल्पना की ? एम्पेडॉक्लीज़ ने केवल चार ही मूल तत्त्वों में विश्वास किया था और शेष वस्तुएँ इन्हीं चार मूल तत्त्वों के संयोग और वियोग के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई थीं, अर्थात् एम्पेडॉक्लीज़ के अनुसार वस्तुओं का रूपान्तरण सम्भव था। पर एनेक्ज़ेगोरस का आक्षेप यह है कि यदि ये चारों महाभूत अमिश्रित, शुद्ध, सरल और एकजातीय हैं तो इनसे किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति का अर्थ है : असत् से सत् का उत्पन्न होना जो असम्भव है। इस आक्षेप से बचने के

24 जैनियों की वस्तु की परिभाषा—अनन्त धर्मकम् वस्तु।
25 फ्रैग्मे०, 1

लिए उसने अनन्त गुण वाले असंख्य 'बीजों' की कल्पना की। उसके अनुसार वस्तुओं का रूपान्तरण अवश्य होता है, पर इसका कारण यह है कि प्रत्येक पदार्थ में प्रत्येक अन्य पदार्थ के 'अंश' वर्तमान होते हैं। इन 'बीजों' की संख्या भी जिनमें ये 'अंश' पाये जाते हैं, असंख्य हैं। ये बीज नित्य, मौलिक और अविकारी हैं। उनकी संख्या उतनी ही है जितने प्रकार के पदार्थ संसार में पाये जाते हैं।

परम-विज्ञान (Nous)—एम्पेडॉक्लीज़ ने चार महाभूतों और संयोग और वियोग के लिए दो प्रकार की बाह्य सत्ताओं 'प्रेम' और 'विग्रह' की कल्पना की थी। एनेक्ज़ेगोरस ने प्रेम और विग्रह को कल्पित और काल्पनिक बताया और उसने यह भी निवेदन किया कि ये 'भौतिक' शक्तियाँ गति का कारण कदापि नहीं हो सकतीं। कोई चेतन, क्रियाशील, सजीव और विज्ञान-रूप सत्ता ही विश्व की गति का कारण हो सकती है। एनेक्ज़ेगोरस ने इस अपार्थिव और भौतिक सत्ता का नाम 'परम विज्ञान' (Nous) रक्खा। यह आत्म-रूप, बुद्धि-रूप चैतन्य है जो जगत् के प्रथम स्पन्दन के लिए उत्तरदायी है। यह विश्व का अधिष्ठाता है और बीजों में गति उत्पन्न करने का कारण है। विश्व में सामञ्जस्य और एकरूपता इसी के कारण हैं।

अब प्रश्न यह है कि एनेक्ज़ेगोरस ने इस अपार्थिव तत्त्व 'परम विज्ञान' की कल्पना ही क्यों की ? और यदि कल्पना भी की तो इसे विज्ञान-रूप क्यों माना ? इसका कारण यह है कि एनेक्ज़ेगोरस जगत् में परिव्याप्त व्यवस्था, अनुक्रम, प्रयोजन, सौन्दर्य, उद्देश्य, और सामञ्जस्य से पर्याप्त प्रभावित था। इन सारी चीज़ों की समुचित व्याख्या भौतिक शक्तियों के माध्यम से कदापि नहीं की जा सकती। जगत् एक चेतन सत्ता की पावन सृष्टि है और वह चेतन सत्ता परम-विज्ञान (Nous) है।

परम विज्ञान की विशेषताएँ—एनेक्ज़ेगोरस ने 'परम-विज्ञान' की कई विशेषताओं की ओर संकेत किया है—

(१) परम-विज्ञान एक विशुद्ध, अमिश्रित[२६] सत्ता है : अर्थात्, यह किसी अन्य वस्तु के अंशों को धारण नहीं करता। इस विशेषता के कारण संसार की सभी वस्तुओं के ऊपर इसका पूर्ण नियंत्रण है। एनेक्ज़ेगोरस के शब्दों में, परम विज्ञान ही 'गति'[२७] का कारण है। गति का अधिष्ठान होते हुए भी यह स्वयं अगतिशील (Unmoved) है, अन्यथा अनवस्था-दोष आ जायगा। इस प्रकार यह पूर्ण, निरपेक्ष, विशुद्ध, एकजातीय सत्ता है जो सर्वशक्ति-सम्पन्न है।

(२) एनेक्ज़ेगोरस ने परम विज्ञान को 'अत्यन्त सूक्ष्म जड़ तत्त्व' कहा है और साथ-साथ उसकी अधिकतर (Greater) और न्यूनतर (Smaller) मात्रा की ओर भी संकेत किया है। अर्थात् यह स्थान घेरता है और इस प्रकार परम-विज्ञान भौतिक तत्त्व है। यह प्रो० बर्नेट का विचार है। प्रो० गॉम्पर्ज ने परम विज्ञान को न तो सर्वथा जड़ और न सर्वथा चेतन' बताया है। जेलर के अनुसार, एनेक्ज़ेगोरस का 'परम विज्ञान' एक अभौतिक और अपार्थिव सत्ता है जो कि चेतन रूप है, क्योंकि वह 'सभी वस्तुओं का ज्ञान रखती है।' पर इतना निश्चित है कि एनेक्ज़ेगोरस ने अपने आत्म-तत्त्व (Nous) का महत्व ठीक प्रकार से नहीं

२६. फ़्रैग्मे० १२

समझा। इसका मुख्य कार्य बीजों में गति उत्पन्न करने तक ही सीमित रह गया। प्लेटो ने साक्रेटीज़ के माध्यम से इसकी आलोचना करते हुए लिखा : ''मैंने एक व्यक्ति को एनेक्ज़ेगोरस की पुस्तक पढ़कर कहते हुए सुना कि उनके अनुसार इस विश्व की उत्पत्ति और उसके सामञ्जस्य का कारण 'परम विज्ञान' है। मुझे यह सुनकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई। किन्तु थोड़ी देर बाद ही मेरी आशाओं पर पानी फिर गया, जब मुझे ज्ञात हुआ कि उन्होंने अपने 'परम विज्ञान' का कोई उपयोग नहीं किया।''[२८] इसी प्रकार एरिस्टॉटल ने भी एनेक्ज़ेगोरस के परम विज्ञान की खिल्ली उड़ाई है। वास्तव में उसने आत्म-तत्त्व का केवल नाम ही लेकर संतोष की साँस ले ली है।

(२) एनेक्ज़ेगोरस के अनुसार परम विज्ञान ''जगत् को उत्पन्न करने वाली'' सत्ता नहीं है, वह केवल जगत् की रचना या विन्यास करती है। अर्थात् परम- विज्ञान जगत् का उपादान कारण नहीं है, वह केवल निमित्त कारण है। ''परम विज्ञान'' और ''बीज'' दोनों साथ-साथ निवास करते हैं। परम विज्ञान बीज को उत्पन्न नहीं करता, उनमें केवल व्यवस्था स्थापित करता है।

(३) ''परम विज्ञान'' एक उद्देश्यमूलक (Teleological) और प्रयोजनात्मक (Purposive) सत्ता है। उद्देश्यवाद (Teleology) का तात्पर्य यह है कि संसार की सभी वस्तुएँ अपने लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर अग्रसर हैं, जगत् की उत्पत्ति सोद्देश्य की गई है।

सृष्टि-क्रम—सृष्टि-क्रम के प्रारम्भ में ''बीजों'' की एक मिश्रित (Mixed) अवस्था थी जिसमें प्रत्येक बीज का प्रत्येक अन्य बीजों के साथ सान्निध्य था। यह बीजों की ''प्राकृत'' अवस्था थी। चित्शक्ति (Nous) ने सर्वप्रथम इस मिश्रित राशि के मध्य में एक आवर्त (Vortex) उत्पन्न किया। चित्शक्ति अथवा परम विज्ञान ने यह आवर्त्त क्यों और कैसे उत्पन्न किया, इसके विषय में एनेक्ज़ेगोरस बिल्कुल मौन है। उसने केवल इतना ही कहा कि परम विज्ञान सभी प्रकार की गतियों (Revolutions) का अधिष्ठाता है[२९] और इसलिए इसने मिश्रित राशि को स्पन्दित किया। जिस प्रकार किसी जलराशि में पत्थर के टुकड़े फेंकने से चक्रावर्त उठते हैं और धीरे-धीरे प्रसरित होकर सम्पूर्ण जलराशि में व्याप्त हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार परम विज्ञान द्वारा व्युत्पन्न चक्रावर्त धीरे-धीरे सम्पूर्ण मिश्रित राशि में फैल गया और फैलता जा रहा है। इस क्षोभ के परिणाम-स्वरूप सभी सजातीय ''बीज'', विजातीय बीजों से पृथक् होकर एक साथ संकलित होने लगे। गति की तीव्रता विरल को सघन से, शीतल को तप्त से, अंधकार को प्रकाश से और नम को शुष्क पृथक् करने में सहायता पहुँचाई।[३०] इस पृथक्करण के परिणामस्वरूप दो वृहत् पिण्ड पन्न हुए; उनमें से एक वह था जो विरल, तप्त, द्युतिमान और शुष्क पदार्थों से निर्मित आ था जिसे एनेक्ज़ेगोरस ने आकाश (Aether) नाम दिया; दूसरा जिसमें विरोधी गुणों प्राधान्य रहा, उसे उसने वायु (Air) की संज्ञा दी।[३१] इन दोनों में आकाश अथवा नि ने वाह्य अथवा परिधीय स्थान ग्रहण किया और वायु ने केन्द्रीय स्थान पर आधिपत्य या।[३२]

सृष्टि के दूसरे चरण में, वायु से क्रमशः जल→ पृथ्वी →और पत्थर पृथक् हुए।[३३] यहाँ एनेक्ज़ेगोरस, एनेक्ज़ेमेनीज़ का स्पष्ट अनुसरण करता है। पर आकाशीय पिण्डों के निर्माण में एनेक्ज़ेगोरस का सिद्धान्त बिल्कुल ही मौलिक है। आकाशीय पिण्ड, पृथ्वी के चक्रावर्तन के गतिवेग के कारण उससे पृथक् होकर निर्मित हुए हैं। इनके 'भीतर जो प्रकाश और रक्ताभास दिखलाई पड़ता है, वह उनके गति की तीव्रता का परिणाम है। चन्द्रमा, पृथ्वी का ही एक खण्ड है जो सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एनेक्ज़ेगोरस वह प्रथम व्यक्ति है जिसने चन्द्रमा के वास्तविक स्वरूप को पहचाना। इसके साथ-साथ एनेक्ज़ेगोरस ने ही ग्रहण के सिद्धांत का प्रथम अनुसंधान किया।

एनेक्ज़ेगोरस ने आयोनियन दार्शनिकों की भाँति असंख्य सृष्टियों में विश्वास किया।[३४] ये सृष्टियाँ क्रमशः नहीं, वरन् युगपद हैं। उसने एक स्थान पर स्पष्ट कहा है ''यह केवल हम लोगों के ही लिए नहीं कि संसार की वस्तुओं का पृथक्करण हुआ; ऐसा अन्य स्थानों पर भी हुआ।'' इसका केवल यही अर्थ हो सकता है और वह यह है कि परम विज्ञान ने उस असीम मिश्रित राशि में एक साथ ही कई चक्रावर्तनों को जन्म दिया जिनके परिणामस्वरूप अनेक जगत् एक साथ ही उत्पन्न हुए।

जीव-विज्ञान—एनेक्ज़ेगोरस ने एक स्थान पर लिखा है कि ''प्रत्येक वस्तु में, परम विज्ञान के सिवाय शेष अन्य सभी वस्तुओं के अंश वर्तमान हैं; और कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जिनमें परम विज्ञान के अंश भी वर्तमान है।''[३५] इस प्रकार हम देखते हैं कि एनेक्ज़ेगोरस ने ग्रीक दर्शन के इतिहास में प्रथम बार सजीव और निर्जीव वतुओं में विभेद किया। फिर स्पष्ट किया कि सभी जीवित प्राणियों में एक ही प्रकार का चैतन्य वर्तमान है[३६] जिसका अर्थ यह है कि विभिन्न जीवों में जो चैतन्य का भेद पाया जाता है, वह उनके शरीरों के संस्थान के प्रकार के ऊपर निर्भर करता है। अर्थात् चैतन्य एक ही है, पर किसी शरीर में अपेक्षाकृत अन्य शरीरों के, विकास का अधिकतम अवसर मिलता है और इसी कारण उसमें चैतन्य की अधिकतम मात्रा परिलक्षित होती है। मनुष्य, जीवों में सबसे अधिक बुद्धिमान है; पर इसका कारण यह नहीं है कि उसमें श्रेष्ठतर चैतन्य है, वरन् इसलिए के उसके हाथ होते हैं।[३७]

प्रत्येक जीव में चैतन्य एक ही प्रकार का है, इसीलिए एनेक्ज़ेगोरस ने पौधों और नस्पतियों को भी जीवित प्राणी बताया। उन्हें भी उनकी वृद्धि में सुख और उनकी पत्तियों गिरने में दुःख की अनुभूति होती है। एनेक्ज़ेगोरस की कल्पना के अनुसार वनस्पतियों ीर जीवों की उत्पत्ति वायु-मंडल से हुई। वनस्पतियों के बीज जिन्हें वायु ने अपने भीतर रण कर रखा था, जब वर्षा के जल के साथ पृथ्वी पर उतरे तो पौधों की उत्पत्ति ई।[३८] प्राणियों का जन्म भी बहुत कुछ इसी प्रकार हुआ। एनेक्ज़िमेण्डर की भाँति,

---

फ्रैग्मे०, १५

फ्रैग्मे०, १६

फ्रैग्मे०, ४

एनेक्ज़ेगोरस का भी मत था कि जीवों की उत्पत्ति आर्द्र तत्त्वों से हुई।

प्रत्यक्षीकरण—एनेक्ज़ेगोरस का प्रत्यक्षीकरण का सिद्धान्त एम्पेडॉक्लीज़ के सिद्धान्त के विपरीत है। एम्पेडॉक्लीज़ के अनुसार प्रत्यक्ष समान का समान के द्वारा ही सम्भव है; पर एनेक्ज़ेगोरस के अनुसार प्रत्यक्ष दो विरोधी तत्त्वों के सम्पर्क का परिणाम है। उदाहरणार्थ ''यदि वस्तुएँ उतनी ही तप्त और शीतल हैं जितना कि हमारा शरीर, तो हमें उनके ताप और शीतलता का ज्ञान कदापि नहीं हो सकता। हमें—अपने भीतर इनमें से प्रत्येक की अल्पता के कारण-शीतलता का ज्ञान ताप से, निर्मलता का नमक से और मिष्टता का ज्ञान अम्लता द्वारा होता है; क्योंकि ये सारी चीजें हमारे भीतर पहले ही से वर्तमान हैं।''

''सभी संवेदनाएँ, वेदना के प्रतिफल हैं, यह एक ऐसा मत है जो प्रथम धारणा का परिणाम है, जिसके अनुसार सभी विरोधी वस्तुएँ अपने सन्निकर्ष द्वारा वेदना उत्पन्न करती हैं।''[३९]

एनेक्ज़ेगोरस ने ऊपर जो प्रत्यक्षीकरण-सम्बन्धी सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, वह निश्चित ही एम्पेडॉक्लीज़ से श्रेष्ठतर है। इसकी दो सबसे बड़ी विशेषताएँ जिनका उसने उल्लेख किया है, वे हैं कि प्रथम संवेदना दो विरोधी वस्तुओं के सन्निकर्ष का परिणाम है और दूसरा कि प्रत्येक संवेदना के अन्दर ज्ञानेन्द्रियों की वेदना शामिल होती है। संवेदन-सम्बन्धी वहुत से आधुनिक सिद्धान्तों ने इस बात की पुष्टि की है।

एनेक्ज़ेगोरस ने, जैसा कि सेक्सटस (Sextus) द्वारा सुरक्षित अंशों से पता चलता है, यह भी कहा है कि इन्द्रियों द्वारा हमें वस्तु-जगत् के वास्तविक ज्ञान की उपलब्धि नहीं हो सकती। उसने एक स्थान पर स्पष्ट लिखा है, ''ज्ञानेन्द्रियों की असमर्थता ने हमें सत्य के वास्तविक दर्शन से वंचित कर रक्खा है।''[४०] इसका अर्थ यह है कि हम किसी वस्तु में उन अन्य वस्तुओं के ''अंश'' नहीं देख पाते जो उसके अन्दर वर्तमान हैं; हम किसी वस्तु के केवल उन्हीं अंशों को जान पाते हैं जिनका उसके अन्दर प्राधान्य है। पर इतना होते हुए भी एनेक्ज़ेगोरस संदेहवादी नहीं है, क्योंकि उसने एक स्थान[४१] पर स्वीकार किया है कि वस्तुएँ जो गोचर हैं, हमें गोचरातीत वस्तुओं के देखने की क्षमता प्रदान करती हैं। अतः वह संदेहवादी नहीं है।

उपसंहार

एनेक्ज़ेगोरस के दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता उसके परम विज्ञान (Nous) की परिकल्पना है। उसने स्पष्ट रूप से अनुभव किया कि जड़ पदार्थ स्वयं ही जगत् की रचना नहीं कर सकते; उसके लिए आत्म तत्त्व की आवश्यकता है। दूसरे, जगत् की सृष्टि सोद्देश्य की गई है। जगत् के पीछे एक प्रयोजन है। पर एनेक्ज़ेगोरस ने इसका महत्व अच्छी प्रकार नहीं समझा। एरिस्टॉटल[४२] ने ''परम विज्ञान'' की आलोचना करते हुए लिखा है कि ''एनेक्ज़ेगोरस ने जगत् की रचना के लिए आत्मा को एक 'दैव योग'' (Deux ex machina) के रूप में प्रयोग किया है; और जब कभी वह किसी वस्तु की अनिवार्यता